मुंबई विज्ञान कांग्रेस में 'ऐतिहासिक' तूफान!

रोडम नरसिम्हा

इस बार की 102वीं विज्ञान कांग्रेस 3 से 7 जनवरी 2015 को मुंबई में आयोजित की गई थी। इसमें मुख्य रूप से भारत में विज्ञान के इतिहास मुद्दा ही छाया रहा। आम तौर पर विज्ञान कांग्रेस में इस तरह के मुद्दे पर ज़्यादा चर्चा नहीं होती है। इस मुद्दे पर जो तूफान उठा था, उसकी धूल अब बैठने लगी है। तो ऐसे में इस विवाद की जड़ में जाने और उसका विश्लेषण करने का यह उचित समय है।

इस विवाद का केंद्र संस्कृत के विद्वानों और जानकारों द्वारा 'संस्कृत के ज़रिए प्राचीन विज्ञान' विषय पर आयोजित एक परिसंवाद था। इसे विज्ञान कांग्रेस के ही एक हिस्से के तौर पर आयोजित किया गया था। इस विषय पर चर्चा होना विज्ञान कांग्रेस के लिए उचित ही है, खासकर इसलिए कि इस मामले में इतना ध्रुवीकरण है।

सीधे शब्दों में कहें तो आम तौर पर सार्वजनिक बहसों में जो सुना जाता है, उसमें विचार दो खेमों से आते प्रतीत होते हैं। एक खेमे के समर्थकों का दावा होता है कि हमारे पूर्वज आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में सब कुछ जानते थे; जैसे वे सापेक्षता से लेकर क्वांटम यांत्रिकी और स्टेम सेल जीव विज्ञान से लेकर विमानन प्रौद्योगिकी के ज्ञाता थे। लेकिन दूसरा खेमा अतीत की उपलब्धियों सम्बंधी दावों को संदिग्ध बताते हुए खारिज कर देता है। इस विवाद के साथ ही अक्सर एक दार्शनिक पक्ष जुड़ा होता हैः क्या भारतीयों में वह चीज़ है (या कभी रही होगी) जिसे जवाहरलाल नेहरू वैज्ञानिक मिज़ाज कहते थे? मुझे लगता है कि दोनों ही खेमों ने अति कर दी है। यह इसलिए आश्चर्यजनक है क्योंकि हाल के समय में प्राचीन भारतीय विज्ञान के बारे में काफी प्रामाणिक प्रकाशन हुआ है, भारत में भी और बाहर भी।

इस बार विज्ञान कांग्रेस में जो बहस हुई है, उसने मुख्य रूप से तीन विवादों को जन्म दिया। पहला विवाद प्राचीन भारतीय विमानन प्रौद्योगिकी को लेकर है। इस विषय में वहां एक प्रेजेंटेशन भी दिया गया था जो महर्षि भारद्वाज की रचना '*बृहत विमान शास्त्र*' और जी.आर. जोसयर द्वारा लिखित '*वैमानिक शास्त्र*' पर आधारित था। इस प्रेजेंटेशन में इन 'प्राचीन' पुस्तकों के हवाले से चार प्रकार के विमानों का वर्णन किया गया था। इनमें से एक विमान तो मैक 10 की गति से उड़ता था तो दूसरे विमान के तले का व्यास 300 मीटर से ज़्यादा हुआ करता था। लेकिन मज़ेदार बात यह है कि विमान के वज़न के बारे में कुछ नहीं कहा गया है। भारतीय विज्ञान संस्थान बैंगलुरु के एयरोस्पेस एंड मेकेनिकल इंजीनियरिंग विभाग के कुछ प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों ने '*वैमानिक शास्त्र*' का बहुत ही बारीकी से विश्लेषण किया था। इसमें उन्होंने इन डिज़ाइनों को वैज्ञानिक दृष्टि से असंभव करार दिया था। ये वैज्ञानिक एच.एस. मुकुंद, एस.एम. देशपांडे, ए. प्रभु, एच. नागेंद्र और एस.पी. गोविंदराजू हैं और ये सभी संस्कृत से काफी प्यार करते हैं। उदाहरण के लिए जिन विमानों की बात की गई हैं, उनकी डिज़ाइन न्यूटन के नियमों का उल्लंघन करती है। यहां तक कि इन पर आगे की ओर लगने वाले बल का चिन्ह भी गलत था। इन डिज़ाइनों के मौलिक स्रोत का जो पता लगाया गया, उसके अनुसार यह रचना 1900 से 1922 के दौरान कर्नाटक के एक गरीब लेकिन गंभीर संस्कृत विद्वान द्वारा बोलकर लिखवाई गई थी। इसे किसी भी अर्थ में वैदिक नहीं माना जा सकता। भारतीय विज्ञान का झूठा इतिहास बनाकर भारतीय अतीत को महिमामंडित करने का यह प्रयास एक बहुत ही खराब उदाहरण है।

लेकिन अन्य दो विवाद इसके ठीक उलट हैं। इसमें से एक का सम्बंध पायथागोरस प्रमेय (ईसा पूर्व पांचवीं सदी) से है। हालांकि स्वयं पायथागोरस का इस प्रमेय का कोई कथन उपलब्ध नहीं है। मिस्रवासी और बेबीलोनवासी ईसा पूर्व दूसरी सदी में कई 'पायथागोरस' पूर्णांक तिकड़ियों (integer triplets) का इस्तेमाल करते थे, लेकिन उन्होंने इसके बारे में सामान्य सिद्धांत व्यक्त नहीं किया था। इस प्रमेय का सुस्पष्ट कथन बौधायन के शुल्ब सूत्र (पारंपरिक ज्यामिती की एक पुस्तिका, जिसका इस्तेमाल वैदिक हवन कुंडों के निर्माण में किया जाता था) में मिलता है। इसमें बताया गया है कि एक आयत के कर्ण का वर्ग उसके

सामने की दोनों भुजाओं के वर्ग के योग के बराबर होता है जो पायथागोरस प्रमेय के समान है। यह रचना ईसा पूर्व 5वीं से 8वीं सदी के बीच की है। इस तरह साबित होता है कि पायथागोरस के इस प्रमेय से पहले ही बौधायन अपनी प्रमेय प्रतिपादित कर चुके थे।

तीसरा विवाद प्लास्टिक सर्जरी के सम्बंध में है। यह दुनिया के कई हिस्सों में कटी नाक (पुराने ज़माने में नाक काटने की सज़ा काफी प्रचलित थी), फटे होंठ इत्यादि की सर्जरी करने की ज़रूरत के मद्देनज़र अस्तित्व में आई होगी। इसका पहला रिकॉर्ड 3000 से 2500 ईसा पूर्व मिस्र में मिलता है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में सुश्रुत ने भारतीय आयुर्वेदिक ज्ञान को '*सुश्रुत संहिता*' में संकलित कर दिया था। इसे भारतीय आयुर्वेद का एन्साइक्लोपीडिया कहा जाता है। इस संहिता में प्लास्टिक सर्जरी भी शामिल है। इस तरह भारत प्लास्टिक सर्जरी के मामले में शेष दुनिया से काफी आगे था। आधुनिक पश्चिमी जगत में पहली बड़ी राइनोप्लास्टी (नाक की प्लास्टिक सर्जरी) 1815 में एक ब्रिटिश सर्जन ने की थी जिसने 20 साल भारत में बिताए थे। यह सर्जरी ब्रिटिश मीडिया में प्रकाशित इस खबर से प्रेरित थी कि अंग्रेज़ों और मैसूर राज्य के बीच हुई लड़ाई में जिन मराठा सैनिकों की नाक कट चुकी थी, पुणे में उनकी सर्जरी करके कटी हुई नाक को ठीक कर दिया गया था। तथाकथित 'भारतीय नाक' के आगे युरोपीय किसी प्रतिस्पर्धा में टिकते नहीं थे। इसलिए प्लास्टिक सर्जरी को लेकर भारत का दावा ठोस धरातल पर प्रतीत होता है।

जहां तक वैज्ञानिक मिज़ाज का सवाल है, भारत के प्राचीन शास्त्रीय दर्शन और वैज्ञानिक चिंतन पर एक सरसरी नज़र दौड़ाने से ही यह साफ हो जाता है कि हमारे यहां हज़ारों सालों से, सभ्यता के विकास के साथ, पौराणिक कथाओं के साथ ही एक मज़बूत तार्किक धारा भी मौजूद रही है। इसका एक बेहतरीन उदाहरण प्राचीन सांख्य दर्शन है, जिसका उल्लेख उपनिषदों में है और 20वीं सदी के विचारक जे.बी.एस. हाल्डेन भी इसके प्रशंसक रहे हैं। इस विचारधारा की निरीश्वरवादी शाखा का तो यहां तक कहना है कि ईश्वर या भगवान की अवधारणा का कोई प्रमाण ही नहीं है। सांख्यवादी पदार्थ के संरक्षण में विश्वास करते हैं। उनका मानना है कि 'अपदार्थ से किसी पदार्थ का निर्माण नहीं हो सकता' (*ना अवस्तुना वस्तु-सिद्धिः*)। लिहाज़ा वे अपदार्थ से पदार्थ की उत्पत्ति को साफ तौर पर खारिज करेंगे। सांख्य के अनुसार प्रकृति अपनी आतंरिक गतिशीलता की बदौलत अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हुई है और इसलिए सृष्टिवाद (और सृष्टा) के लिए कोई जगह नहीं है। हालांकि सांख्य दर्शन का मानना है कि जड़ (अचेतन) प्रकृति भी मानव जाति के लिए लाभदायक हो सकती है, जैसे कि बारिश। इस तरह वे प्रकृति की विभिन्न सुनियोजित-सी दिखने वाली प्रक्रियाओं को महज़ संयोग मानते हैं। भारत में यह विचारधारा शंकराचार्य जैसे अनेक महान आचार्यों की तीखी आलोचनाओं के बावजूद हज़ारों सालों तक प्रचलन में रही। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि भारत में तर्कवादी आंदोलन ने सृष्टि को लेकर सांख्य विचार को अपना शुरुआती बिंदु नहीं माना?

प्राचीन शास्त्रीय वैज्ञानिक चिंतन पर सांख्य दर्शन का गहरा प्रभाव था। ऋषि चरक ने इस बात का वर्णन किया है कि कैसे अग्निवेश (आयुर्वेद के लेखकों में से एक) का सांख्य दर्शनकारों के साथ गहन विचार-मंथन होता था। भास्कर (12वीं सदी) अपनी प्रसिद्ध रचना 'बीजगणित' की शुरुआत एक ऐसी स्तुति से करते हैं जिसमें वे संख्या या सांख्य की प्रशंसा करते प्रतीत होते हैं। इसे उन्होंने इतने शाब्दिक कौशल से द्विअर्थी श्लोकों में लिखा है कि उसे संख्या या सांख्य दर्शन की प्रशंसा दोनों में से कुछ भी माना जा सकता है।

आज जब भी संस्कृत सम्बंधी सार्वजनिक विमर्श में विज्ञान एवं मायथॉलॉजी (संस्कृत में सिद्धांत और पुराण) का अक्सर घालमेल कर दिया जाता है। लेकिन इन दो के बीच विवाद का भारत में एक लंबा इतिहास रहा है। समझदार चर्चा हो, तो यह कह दिया जाता है कि पुराणों का सम्बंध मोक्ष से है तो विज्ञान लोकाचार से जुड़ा है। इसलिए दोनों का अलग-अलग महत्व है। वहीं कुछ पौराणिक आलोचनाओं में कहा जाता है कि वैज्ञानिक गणनाओं को यथार्थ के प्रमाण के तौर पर स्वीकार नहीं किया जा सकता।

आर्यभट (पांचवीं सदी के प्रसिद्ध गणितज्ञ व खगोलविद) और ब्रह्मगुप्त (सातवीं सदी के बुद्धिमान गणितज्ञ) के बीच ग्रहण को लेकर वैचारिक टकराव काफी रोचक मामला है। आर्यभट ग्रहण को छाया का मामला मानते थे, जबकि

ब्रह्मगुप्त पौराणिक राहु-केतु की कहानी को मान्यता देते थे हालांकि ग्रहण के पूर्वानुमान के लिए वे छाया सिद्धांत का ही सहारा लेते थे। केरल के खगोलज्ञ-गणितज्ञ-दार्शनिक नीलकांत (1444-1545) का कहना है कि उनकी रचना धर्मग्रंथों के बजाय युक्ति पर आधारित है। इसके विपरीत हम देखते हैं कि ब्रिटिश वैज्ञानिक व दार्शनिक फ्रांसिस बेकन (1561-1626) अक्सर ईश्वर और बाइबल का हवाला दिया करते थे। इसी तरह एक शताब्दी बाद न्यूटन ने जितना कार्य विज्ञान में किया, उससे ज़्यादा उन्होंने आध्यात्मिक विषयों पर गुप्त लेखन किया। इसलिए हम भारतीय शास्त्रीय विज्ञान पर गैर-तार्किक होने का अनावश्यक आरोप नहीं मढ़ सकते।

गणित में भारत की कुछ उपलब्धियां

बीजगणित का एक बड़ा हिस्सा, सरल व युग्पत अनिश्चित समीकरण को सबसे पहले हल करना (आर्यभट एवं ब्रह्मगुप्त)। द्विपद सिद्धांत, मिश्र सूत्र एवं पास्कल का त्रिकोण (पिंगला तीसरी सदी)। सेकंड ऑर्डर इंटरपोलेशन फार्मूला और न्यूटन-रॉफसन विधि (ब्रह्मगुप्त)। फिबोनाची संख्याएं (विरहंक 700 ईस्वी, हेमचंद्र 1150 ईस्वी)। फंक्शन्स के डिफरेंशियल मैक्ज़िमा, मीन वैल्यू प्रमेय इत्यादि (भास्कर 12वीं सदी, मुंजाला 800 ईस्वी)। अनंत श्रृंखला और केल्कुलस एवं एनालिसिस की पूर्व पीठिका बनाना (माधव 14वीं सदी)।

और अब कुछ शब्द भारतीय गणित के बारे में, जिसे वैश्विक स्तर पर ही नहीं बल्कि स्वयं हमारे देश में भी उतना सम्मान नहीं मिला जो इसे मिलना चाहिए। प्रसिद्ध अंक प्रणाली और इसके परिणामस्वरूप उभरी सूत्रविधि व कलन सम्बंधी क्रांति के अलावा भी भारत में ऐसी कई खोजें की जा चुकी थीं जिन्हें बाद में युरोपीय देशों में फिर से खोजा गया। जैसे-जैसे हम भारतीय विज्ञान के इतिहास से रूबरू होते जा रहे हैं, वैसे-वैसे गणित के क्षेत्र में हमारी उपलब्धियां सामने आ रही हैं। यह सूची बहुत लंबी है (देखें बॉक्स)। गणित में यह योगदान कोई छुटपुट योगदान नहीं है। दुनिया पर इसका कैसा सामूहिक असर पड़ा, इसे हर्मन वेयल ने अपनी किताब '*प्रीफेस टू दी थ्योरी ऑफ ग्रुप्स एंड क्वांटम मेकेनिक्स*' (1928) में बहुत ही सारगर्भित एवं सटीक ढंग से लिखा है :

'पश्चिमी गणित ने सदियों पुरानी यूनानी विचारधारा से पल्ला छुड़ाकर ऐसी राह का अनुसरण किया है जो भारत से निकली है और अरब होते हुए कुछ जुड़ते-जुड़ाते हम तक पहुंची है। इसमें संख्या की अवधारणा तार्किक रूप से ज्यामिती अवधारणा से पहले की प्रतीत होती है।'

भारतीय गणित की प्रशंसा में कहे गए ये शानदार शब्द इस बात की पुष्टि करते हैं कि प्राचीन भारतीय गणितीय अवधारणाएं रचनात्मक मुस्लिम यात्रियों के माध्यम से युरोप में धीमी लेकिन सतत गति से फैल रही थीं। इसका चरमोत्कर्ष चार सदी पहले आया था जिसमें गणित को फिर से परिभाषित किया गया और जो गणितीय क्रांति हुई, उसे ही हम आधुनिक विज्ञान कहते हैं। जब हमारे पास इस तरह की समृद्ध विरासत है तो हमें अतीत की कहानियों को खोजने की बजाय वर्तमान में काम करने की ज़रूरत है।

अब समय आ गया है कि हम फिर से विज्ञान को पौराणिक कथाओं से (दोनों में आनंद है, लेकिन दोनों तभी श्रेष्ठ हैं जब उन्हें साथ में मिलाया न जाए), साक्ष्य आधारित विचारों को काल्पनिक विचारों से और तर्कों को अंधविश्वासों से अलग करके देखे (यह महसूस करते हुए कि पूरा जीवन शुद्धतः तार्किक नहीं हो सकता, रामानुजन को उदाहरण मानते हुए)। यह संभव बनाने का दायित्व वैज्ञानिकों का है जिन्हें अपनी दुनिया से बाहर के मित्रों के साथ मिलकर काम करना होगा। हमारी नई पीढ़ी अपने अतीत के तर्कसंगत ज्ञान को जानने के लिए आतुर है, लेकिन उन्हें इसका मौका नहीं मिल रहा। ऐसा दो वजहों से हो रहा है। एक तो हमारी शिक्षा प्रणाली में विज्ञान पाठ्यक्रम में इतिहास की उपेक्षा की जाती है। दूसरा, भारतीय विचारों के शानदार इतिहास का कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं है। तो ऐसे में हमारे विद्वानों, विश्वविद्यालयों, संग्रहालयों और अन्य दूसरे संस्थानों को इस तरह का एक राष्ट्रीय मिशन शुरू करना चाहिए जिससे भारतीय वैज्ञानिक विचारों के साक्ष्य आधारित इतिहास की खोज की जा सके। अन्यथा इसका मतलब यही होगा कि हम अपनी अद्वितीय विरासत को लेकर अंधे बने हुए हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***